

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दस्तावेज-प्रवाद पर्व

डॉ. मार्टण्ड सिंह

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद

संघटक—पी. जी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

नरेश मेहता के चारों प्रबन्ध काव्यों की आधार भूमि पौराणिक है। इसीलिए उन्होंने चारों काव्यों का कथानक प्राचीन भारतीय पौराणिक आख्यानों से ग्रहण किया है। उनकी मूल चिन्ता संस्कृति की शोध है। यदि भारतीय संस्कृति में जहाँ तहाँ धुन लग गए हैं, तो उसे निर्विकार बनाने की भी उन्हें उतनी ही व्याकुलता भी है। इस सन्दर्भ में वे अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं—“कई बार मुझे लगता है कि इस देश, जाति, संस्कृति और सभ्यता की ऐसी प्रदीर्घ अस्मिता-हीनता का क्या कारण है? वेद, उपनिषद, उन्नत दर्शन, सम्प्रदाय, प्रशान्त आकर ग्रन्थ पुष्कल सद्गुण, सन्तों-महात्माओं की अक्षुणा परम्परा के होते हुए भी यह देश क्रमशः अस्मिताहीन ही वैश्वसे हो गया?”

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने यह चिन्ता अतीव गहराई से अभिव्यक्त हुई है। भारतीय संस्कृति के विकास क्रम में जो अनेक विकृतियाँ आती गयी हैं, नरेश जी उनको लेकर बहुत चिन्ताकुल रहे हैं। वैदिक संस्कृति को पौराणिकता ने जिस प्रकार संशोधित-परिवर्द्धित किया है, उस पर भी उनकी पूर्ण सहमति नहीं है। उनकी वृष्टि में जहाँ पुराणों ने राम और कृष्ण के मनुष्य रूप को ईश्वरत्व प्रदान करके एक नयी भागवत भक्ति की परम्परा का शुभारम्भ किया, वहीं उन्हीं पुराणों ने सर्वमाय एवं सर्व प्रमुख देवता ‘इन्द्र’ के चरित्र को अंतःपतित करने की दुरभिसच्चि की। इन्द्र के साथ किया गया यह अतिचार संस्कृति के निर्मल वैदिक प्रवाह को कई अर्थों में क्षरित करता है। नरेश जी ने इस सन्दर्भ में लिखा है—“वेद में जो विष्णु एक गौण देवता है, उनकी वैदिक वामनता को पुराणिकों ने विराटता में परिणत कर दिया। विष्णु को

ऐसी प्रमुखता मिलने में निश्चय ही इन्द्र बाधक हो सकते थे। अतः जिस रूप में जिस भाषा में और जिस कृतग्रन्थ के साथ इन्द्र को विष्णु के महाभिषेक में बलि पशु बनाया गया, वह नितान्त जघन्य कृत्य था।”

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरेश मेहता की पौराणिक वृष्टि अन्धी स्वीकृति न होकर, मूल्यान्वेषी है। वे मूल्यान्वेषण की चेष्टा में समस्त सांस्कृतिक चेतना के विकास को उनके अन्तर्विरोधों के साथ देखते हैं तथा उसके स्वस्थ पक्ष को ही स्वीकारते हैं।

नरेश मेहता के व्यक्तित्व में औपनिषदिकता और वैष्णवता का अपूर्व संगम है। उनकी काव्यात्मकता में ये दोनों एकी भूत हो जाते हैं। मेहता जी का कवि-व्यक्तित्व पूरी आर्षचिन्तनशीलता में छबा हुआ है। उनकी सम्पूर्ण शब्दावली उसी आर्ष-परम्परा से संस्कारित हुई है।

नरेश जी का काव्य एक सर्वथा नयी दिशा की खोज है। वैषणवता एवं उदात्तता से परिपूर्ण मंगलाकांक्षिणी दिशा की खोज है। प्रवाद-पर्व ‘खण्ड काव्य १९७७ ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें कवि ने समकालीन परिस्थितियों में निहित तथ्यों की खोज पौराणिक कथा ‘राम-वृक्ष’ में की है। प्रत्येक रचना अपनी समकालीनता के दबावों से ही स्वरूपित एवं उद्भूत होती है। ‘प्रवाद-पर्व’ में कवि ने लोकतत्व बनाम राजतन्त्र या व्यक्ति और प्रशासन की समस्या पर प्रश्न चिह्न लगाया है। यह खण्ड-काव्य पाँच सर्गों में विभाजित है। प्रथम सर्ग में इतिहास और प्रति इतिहास का विश्लेषण-विवेचन किया गया है। रावण के वध के बाद राम अयोध्या तो आ जाते हैं—शासन भार ग्रहण कर लेते हैं। राजा बनकर दिंसहासनासीन तो हो जाते

हैं, किन्तु उनकी प्रजा का एक साधारण ‘धोबी’ सीता की चरित्र-मर्यादा पर अंगुली उठा देता है। राज्य-व्यवस्था के नियमानुसार उसे अपराधी, अनुत्तर दायित्वपूर्ण एवं राज द्वोही करार किया जाता है। राम सीता के कारण होने वाले ‘लोकापवाद’ से उद्विग्न है। राम की उद्विग्नता इस बात को लेकर है कि कर्म के इस तटस्थ भागवत-अनुष्ठान से कोई मुक्ति सम्भव क्यों नहीं है? राम के मानस में यहीं से वह प्रश्न उभरता है, जो एक साधारण जन की अवाम तर्जनी के कारण बहुत बड़ा प्रश्न हो गया है। राम की राजसी-गरिमा और चरित्र-मर्यादा कोई अवाम धोबी भी संकेतित करे, तो वह राम की दृष्टि में उसका अधिकार है, किन्तु राज्य के नियमानुसार वही गम्भीर अपराध है। इसी ऊहापोह या विवाद का अभिव्यंजन इस खण्ड में हुआ है। इसी विवाद को हल करने के प्रयत्न में कवि ने अनेक प्रश्न और भी उठाए हैं। ‘व्यक्ति-स्वातंत्र्य’, ‘प्राज्ञव्यक्ति-स्वातंत्र्य’ और इसी प्रकार के विविध प्रश्नों से जूझता हुआ ‘व्यक्ति और प्रशासक के सम्बन्धों पर भी विचार प्रस्तुत कर सका है।

‘उदारता’ एवं ‘सत्य’ जैसे शाश्वत मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा का महत्व हमारी भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। संस्कृति-साहित्य में कहा गया है—

‘उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्’

‘सत्य’ नामक मूल्य की महत्ता को दर्शाते हुए कहा गया है कि—‘सत्यमेव जायते नानृतम्’। इस प्रकार आलोच्य खण्ड काव्य में ‘सत्य’ को सर्वोपरि मूल्य मानते हुए कवि कहता है—

‘व्यक्ति

चाहे वह राज पुरुष हो या

इतिहास पुरुष अथवा

पुराण-पुरुष

मानवीय देश-कालता से ऊपर नहीं होता राम।

इतिहास से भी बड़ा मूल्य है

सत्य—

परात्पर सत्य, ऋत—

और

यही तुम्हारी चरित्र-मर्यादा है

ऋतम्भरा व्यक्तित्व है।”

‘मानवतावाद’ में भारतीय संस्कृति की पूर्ण आस्था सर्वविदित एवं विश्व विश्रुत है। कवि प्रस्तुत काव्य में कवि राम वामे द्वारा मानवीय उदात्तता की गरिमा को उजागर करता है—

“**इतिहास**

खड़ग से नहीं

मानवीय उदात्तता से लिखा जाना चाहिए।।।”

भारतीय संस्कृति ‘प्रारब्ध’ (पूर्व जन्मों के कर्मों में विश्वास) को मानती चली आयी है। कवि ने राम के द्वारा इसी ‘प्रारब्ध-कर्म’ की ओर संकेत करते हुए कहलाया है—

“**क्या यही है मनुष्य का प्रारब्ध? कि**

कर्म

निर्मम कर्म

केवल असंग कर्म करता ही चला जाए?

भले ही वह कर्म

धारदार अस्त्र की भाँति

न केवल देह

बल्कि

उसके व्यक्तित्व को

रागात्मिकताओं को भी काटकर रख दे।

क्या यही है मनुष्य का प्रारब्ध?

कवि सांस्कृतिक-राग-बोध से प्रेरित होकर आलोच्य काव्य में ‘यम-दिशा’ (दक्षिण-दिशा) इन्द्र दिशा (पूर्व दिशा) तथा सप्तर्षि, आदि का उल्लेख करता हुआ लिखता है—

“**दिशा**

चाहे वह यम की हो,

या इन्द्र की—

जिसे प्राप्त करने के लिए

अनन्त काल से सप्तर्षि

यात्रा तपस्या में लीन है।”

‘परम-सत्ता’ या ‘अव्यक्त महाशक्ति’ में हमारी भारतीय संस्कृति सनातन काल से विश्वास व्यक्त करती चली आ रही है। वह ‘जगन्नियन्ता’ सर्वोपरि है। कवि उसी महासत्ता की ओर इंगित कर रहा है—

“लेकिन किसका?

कौन है वह

अपौरुषेय

जो समस्त पुरुषार्थता के अश्वों को

अपने रथ में सन्नद्ध किए हैं?

कौन है?

वह कौन है?”

राम की मनःस्थिति का अंकत करते हुए कवि ने यह स्थापित किया है कि ‘सत्य की अभिव्यक्ति’ का श्रेय मात्र राज पुरुषों और इतिहास पुरुषों को ही नहीं होता, उन साधारणजनों को भी होता है, जो अनाम होकर जीते हैं। सत्य मानवीय—सत्य की रक्षा का हेतुक बनकर आनेवाला इतिहास ही मानवीय सत्य का प्रतिनिधि होता है। इस स्थिति की व्यंजक कतिपय पंक्तियाँ उल्लेख हैं—

“तर्जनी वह किसी की भी हो,

वाणी ही होती है।

2 2 2

इतिहास भी आग होता है,

और आग पर कोई और नहीं

केवल पिपीलिका ही चल सकती है।

संज्ञा-हीन पिपीलिका॥

2 2 2

क्या चरित्र,

क्या अधिकार,

केवल राज पुरुषों या

इतिहास-पुरुषों के ही होते हैं?

अनाम साधारण जन के कुछ नहीं होते राम।”

इसी मानवीय सत्य की प्रतिष्ठा की अनुभूति के कारण राम विविध प्रश्नाकुलता के बावजूद उस अनाम धोबी के वाणी विहीन प्रति इतिहास के समक्ष अपनी ऐतिहासिकता की परीक्षा देना चाहते हैं—

“इतिहास को,

मानवीय अभिव्यक्ति का

औषनिषदिक पद दो,

व्यक्ति मात्र को

इतिहास से परिधानित होने दो

इतिहास—

मानवीय विष्णु की कण्ठश्री

वैजयन्ती है।”

राज्य या शासन तन्त्र पर साधारण जन की तर्जनी सर्वदा अंकुश लगाती रही है। इस सन्दर्भ में डा. राम कमल राय का कथन है कि—‘राज्य जब-जब एकाधिकारवादी बनता है, उसे सदा से ही यही साधारणजन अपनी अनाम तर्जनी उठाकर चुनौती देता रहा है और यह चुनौती सदा से ही शक्तिमती सिद्ध होती रही है। इस खण्डकाव्य में राज्य की निरंकुश सत्ता के मुकाबले में उठी साधारण जन की इस तर्जनी की ही प्रतिष्ठा है। इसीलिए, इस खण्ड-काव्य में सीता के साथ हुए राम द्वारा अन्याय की बात दबी ही रह जाती है।’’ राम भारतीय संस्कृति में ‘मर्यादा पुरुषोत्तम’ ‘न्याय-प्रिय’ एवं ‘धर्म-निष्ठ’ मनाये गए हैं। वे इसी शाश्वत-मूल्य ‘न्याय’ की प्रतिष्ठापना करना चाहते हैं। वे भरत से कहते हैं—

‘केवल समदर्शी ही नहीं
 उसे तत्वदर्शी भी होने दो।
 राज भवनों और राज पुरुषों से ऊपर
 राज्य और न्याय को
 प्रतिष्ठापित होने दो भरत।
 यदि वे तत्वदर्शी नहीं होते
 तो एक दिन

निश्चय ही वे भय के प्रतीक बन जायेंगे।।।’

इस प्रकार ‘समानता’, ‘न्याय’ तथा ‘सत्य’ की प्रतिष्ठा पर राम जोर देते हैं। यह कवि की सांस्कृतिक चेतना है जो राम के माध्यम से मुखरित हुई है।

आलोच्य काव्य के द्वितीय खण्ड प्रति इतिहास और तन्त्र में राम अपने सभासदों के मध्य उस अनाम साधारणजन द्वारा उठाई गयी तर्जनी का औचित्य प्रमाणित करते हैं। वे कहते हैं कि—न्याय, न्याय होता है—मानवीय सम्बन्ध नहीं। अतः उसे समूची मानवता के विशाल परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। भरत, लक्ष्मण एवं मंत्री—सभी धोबी के कृत्य को राजद्रोह मानते हैं, किन्तु राम का विवेकी व्यक्तित्व अपने सबल तर्कों द्वारा उनकी प्रत्येक बात को काटते हुए कहते हैं—

“और आज
 जब एक अनाम साधारण जन
 हमारी राज्य-गरिमा
 और चरित्र मर्यादा की
 ओर प्रति इतिहास के प्रकम्पित ध्वज-सी,
 तर्जनी उठाता है

2 2 2

तब मुझमें और रावण में क्या अन्तर रह जाता है?
 नहीं, ऐसा कदापि नहीं होगा बन्धुओं।”

जनता जनार्दन स्वरूपा होती है। जन-भावना का समादर ही ‘मानवता’ एवं उदात्तता है। प्रवाद-पर्व ‘का-

तीसरा सर्ग’ शक्ति—एक सम्बन्ध : एक साक्षात् है। यहाँ सीता को ‘शक्ति’ स्वरूपा माना गया है। राम कहते हैं कि शक्ति का उत्तर तो प्रति शक्ति से दिया जा सकता है। सीता और राम का इस खण्ड में आया संवाद राम की साधारणजनों के प्रति ममत्व दृष्टि को ही नहीं स्पष्ट करता है अपितु सीता की—व्यक्तिमत्ता को भी स्पष्ट करता है। सीता के कथन ‘न्याय’ राष्ट्र एवं सामान्य जन की रक्षा के व्यंजक हैं—

‘राज्य, न्याय और राष्ट्र

व्यक्तियों तथा

सम्बन्धों से ऊपर होने चाहिए।

उस अनाम प्रजा के विश्वास की

अभिव्यक्ति की

रक्षा होनी चाहिए।”

‘राजा’ हमारी संस्कृति में ‘ईश्वर’ का प्रतीक माना गया है। अस्तु, उसे ‘न्याय’ एवं ‘महामानवत्व’ जैसे उदात्त मानव-मूल्यों की सर्व प्रकारेण रक्षा करनी चाहिए। यही ‘धर्म’ है। सीता के कथनों के माध्यम से कवि ने इस सांस्कृतिक मूल्य की रक्षा की उद्घोषणा की है।

आलोच्य कृति के चौथे खण्ड ‘प्रति इतिहास और निर्णय’ में राम न्याय-मंच से इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि मनुष्यता सर्वोपरि है। यही हमारी संस्कृति का सर्वोच्च मानव-मूल्य है। कोई विशिष्ट व्यक्ति न्याय और राज्य से बड़ा नहीं हो सकता। सीता के चरित्र पर अंगुली उठाना राजद्रोह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि राजद्रोह व्यक्ति के कृत्य पर नहीं, राष्ट्र के विरुद्ध किए गए कार्य से होता है। राम तथा सीता—राष्ट्र नहीं है। सीता के त्यागपूर्ण उदात्त-चरित्र द्वारा ही इस शंका का सन्तोषपूर्ण उत्तर दिया जा सकता है। अतः सीता वनवास के लिए सूर्योदय के साथ ही प्रस्थान करेगी और इस काल में उन्हें कोई राजकीय सुविधा नहीं दी जायेगी। राज्य के सीमान्त तक लक्ष्मण उन्हें छोड़ने जायेगे। इस कथन में

शासक की कठोर 'न्याय-प्रियता' और 'राम राज्य की गरिमा' का सशक्त अंकुरण हुआ है—

‘या तो राष्ट्र का प्रत्येक सदस्य स्वाधीन है
या फिर स्वाधीनता
केवल कपोल-कल्पना है।

2 2 2

अतः

कल सूर्योदय के साथ ही
सीता

वनवास के लिए प्रस्थान करेगी।

वनवास-काल में

वह किसी भी राजकीय पद

मर्यादा, सुविधा और सुरक्षा की अधिकारिणी नहीं
होगी

और सीमान्त तक

लक्ष्मण उनके रथ का सारथ्य ग्रहण करेंगे॥”

उपर्युक्त पंक्तियों में 'भारतीय-संस्कृति' का 'मर्यादावादी न्याय परक' दृष्टिकोण मुखरित हुआ है। एक आदर्श शासक के उच्च मानव मूल्यों की सुन्दरतम अभिव्यक्ति हुई है। ऐसी आदर्श नैतिकता पर हमारी संस्कृति और हमारे राष्ट्र को गर्व है।

मनुष्य का भाषाहीन होना सृष्टि का ईश्वरही न होना है। शक्ति के सम्बन्ध और साक्षात् के सम्बन्ध में स्वेच्छा से वरण किए गए निष्कासन, उपेक्षा और अवमाननाएँ—तपस्या स्वरूप हो जाती है। सीता अपने संवाद में व्यक्तिगत सुख की उपेक्षा कर, राम की स्थिति को समझते हुए 'राष्ट्रीयता के महत्व' को प्राथमिकता देती है—

‘मैं या
कोई भी
राष्ट्र, न्याय और सत्य से बड़ी नहीं॥”

हमारी भारतीय संस्कृति मानती है कि—'नहि राष्ट्रात् परो हि कश्चित्' अर्थात् राष्ट्र से श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'—(वाल्मीकि रामायण लंका काण्ड)

'शब्द' को ब्रह्मा कहा गया है और शब्द जनता है। यदि जनता ही मूक हो गयी, तो राष्ट्र जो कि ब्रह्म है, उसकी महत्ता नहीं रह जायेगी। जिस दिन व्यक्ति अभिव्यक्तिहीन हो जायेगा, वह समाज का सबसे बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा—

‘गूँगेपन से कहीं श्रेयस् है
वाचालता।

जिस दिन मनुष्य अभिव्यक्ति हीन हो जायेगा,
वह सब से अधिक
दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा॥”

कृति का अन्तिम खण्ड निर्वेद विदा 'में राम सत्य, न्याय, मर्यादा, राष्ट्र रक्षा, आदि की प्रतिष्ठा के लिए सीता को निर्वासित कर देते हैं। यही तो लोक-मर्यादा है। यही तो भारतीय संस्कृति का औदात्य है।

यज्ञ के चरु पात्र-सी मांगलिक सीता की यह परीक्षा उस घड़ी का निर्णय है जिसमें व्यक्ति निर्वयक्तिक उदार चरित्र बन जाता है और अपनी इतिहास-पुरुषता की रक्षा के लिए निर्मम और असंग कर्म करता जाता है। कुल मिलाकर 'प्रवाद-पर्व' लौकिक मर्यादा, न्याय, मानवता और सत्य का प्रतिष्ठापक एवं सांस्कृतिक-बोध का उद्घोषक खण्ड काव्य है। इसमें भारतीय उदात्-मूल्यों के प्रति उक्षेष्ट संवेदना व्यंजित हुई है। इस प्रसंग में कवि ने अपनी आधुनिक चिन्तन का रंग मिलाकर इसे सार्वकालिक और सार्वजनीत बना दिया है।

'प्रवाद पर्व' में नर की नारायणता संकेतित है। सीता कहती है कि 'साधारणजन' नारायण स्वरूप है और मैं भी न्याय की आकांक्षिणी हूँ—

‘‘साधारणता के इस नारायण को
कार्य पुत्र।

न्याय के प्रति नारायण की अपेक्षा है।

और मुझे भी।"

श्री प्रभाकर शर्मा ने 'प्रवाद-पर्व' के सर्वतोमुखी महत्त्व को अनुरोधित करते हुए सर्वथा उचित ही लिखा है कि—'प्रवाद पर्व' के राम स्वतन्त्रता के समर्थक और प्रजातान्त्रिक मूल्यों के विश्वासी हैं। वे राज्य की मानवीय परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने वाले हैं। वे ऐसे सत्ताधीश नहीं हैं, जो साधारणतया का गला घोंट कर उसे भाषा-हीन बनाकर शक्ति का प्रयोग मात्र अपने हित में करते हो सके तो अभिव्यक्ति स्वतन्त्र्य के समर्थक, न्याय-प्रिय, मानवता के पक्षधर और वैयक्तिकता का सामूहिकता के लिए होम देने वाले प्रश्नावान पुरुष हैं। + + वे यह भी अनुभव करते हैं कि राज्य, न्याय तथा राष्ट्र को - व्यक्तियों तथा सम्बन्धों से ऊपर होना चाहिए।

'प्रवाद-पर्व' रामायणीय पौराणिक सन्दर्भ को लेकर लिखा गया, एक ऐसा खण्डकाव्य है, जिसमें सांस्कृतिक-उदात्त-मानव-मूल्यों को परिभाषित किया गया है। यह काव्य अपनी समस्त पौराणिकता के बावजूद १९७५-१९७६ की आपात् स्थिति के आधुनिक बोध से युक्त है। कवि ने आपात्-स्थिति में उठे प्रश्नों को मानवीय परिप्रेक्ष्य में समाधानित किया है। नरेश मेहता लोक बनाम राजतन्त्र की समस्या को आमने-सामने रखकर प्रजातान्त्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना में पूर्णतः सफल हुए हैं।

डा. सन्तोष कुमार तिवारी के शब्दों में—'निःसन्देह, नरेश मेहता ने राम और सीता के वैचारिक आलोड़न-विलोड़न को सूक्ष्म पकड़ के साथ स्थापित किया है। इतिहास और प्रति इतिहास के समानान्तर

चलने वाली रेखा शक्तियों की सटीक व्याख्या की है। प्रति इतिहास के साथ किए गए तन्त्र के दुर्व्यवहार से उत्पन्न परिस्थितियों पर गहराई से प्रकाश डाला है। राम के तर्क और निरंकुश राजतन्त्र के रूप में रावण के सन्दर्भ में बहुत मौलिक और सशक्त चिन्तन के द्योतक हैं। + + + वास्तव में नयी कविता के श्रेष्ठ आख्यानक काव्यों में 'प्रवाद-पर्व' की गणना की जा सकती है, क्योंकि वह अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का जानदार दस्तावेज है।' ६६

सन्दर्भ ग्रन्थ

- प्रवाद पर्व, पृष्ठ ३५
- प्रवाद पर्व, पृष्ठ ३३
- प्रवाद पर्व, पृष्ठ १९
- प्रवाद पर्व, पृष्ठ २१
- वही, पृष्ठ २०
- प्रवाद पर्व, पृष्ठ ३३-३४
- नरेश मेहता : कविता की ऊर्ध्वयात्रा—डा. रामकमल राय, पृष्ठ ९४
- प्रवाद पर्व, पृष्ठ १०३-१०४।
- प्रवाद पर्व, पृष्ठ ७१
- प्रवाद पर्व, पृष्ठ ३१
- नरेश मेहता : विमर्श और मूल्यांकन, पृष्ठ १३२-प्रभाकर शर्मा
१२. नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर—डा. सन्तोष कुमार तिवारी, पृष्ठ-२१३